ISSN 2319-6785
वर्ष 28 अंक - 4
अक्तूबर-नवंबर 2016

दवैमासिक

राष्ट्रवाणी

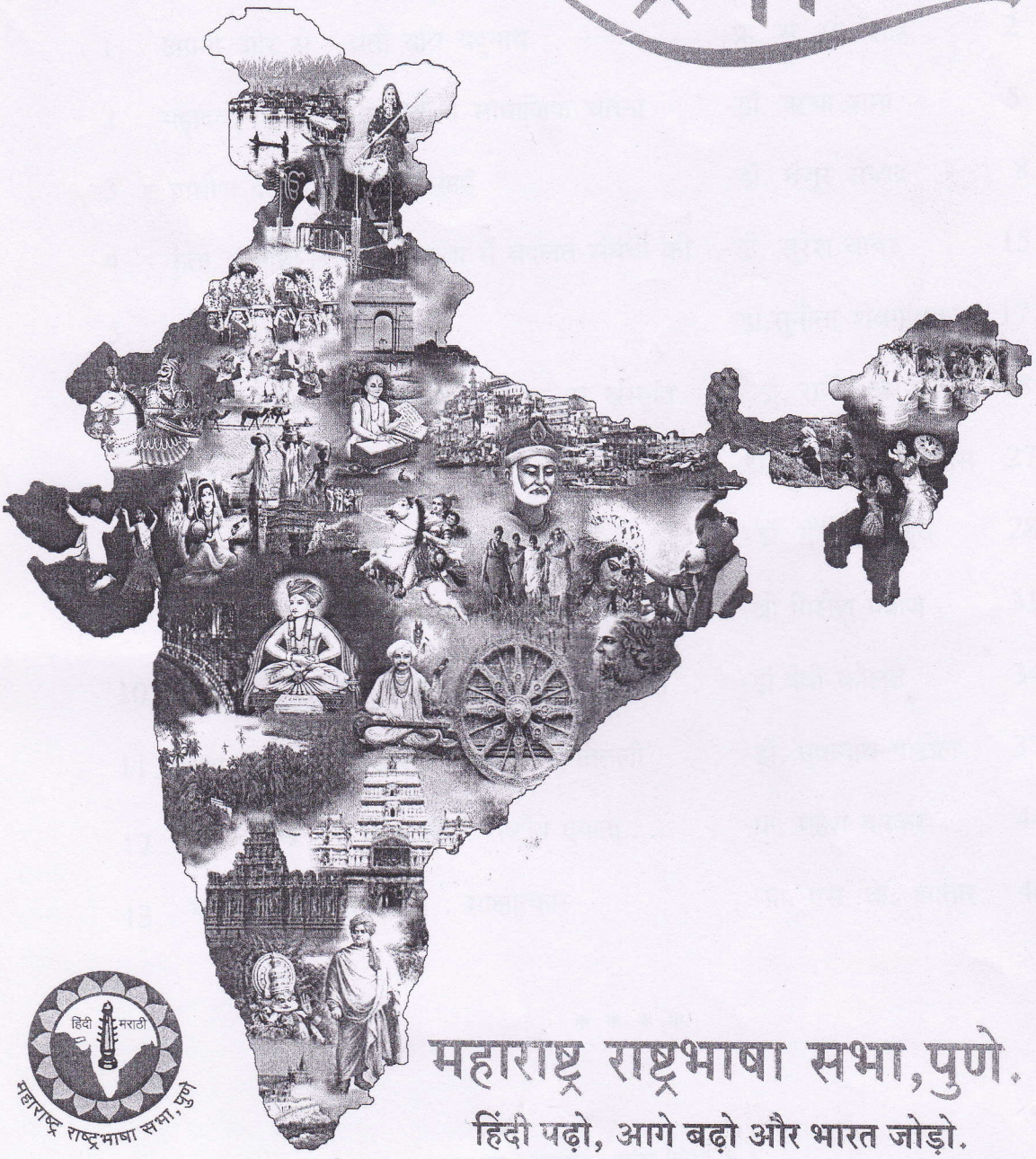

महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा, पुणे.

हिंदी पढ़ो, आगे बढ़ो और भारत जोड़ो.

TRUE COPY
Principal
K.R.T. Arts, B.H. Commerce &
A. M. Science College Nashik-2.

अनुक्रमणिका

अक्तूबर - नवंबर 2016

1.	अपनी ओर से - व्रती यति यदुनाथ	-प्रा. सु. मो. शाह	2
2.	महादेवी के गद्य साहित्य में सामाजिक चेतना	-डॉ. ऋचा शर्मा	5
3.	ग्रामीण दलितकृषक समस्याएँ	-डॉ. मंजूर सैय्यद	8
4.	कुंतो : आधुनिक मानसिकता में बदलते संबंधों की ..	-डॉ. सुरेश बाबर	15
5.	कविता ... अंशुमाली	-डॉ.सुनीता शेवगांवकर	17
6.	स्त्री विद्रोह का रचनात्मक स्वर-सेज पर संस्कृत	- डॉ. राजेंद्र खैरनार	18
7.	कवि महेंद्रभटनागर	-डॉ. सत्यनारायण व्यास	27
8.	'सत्यमेव जयते' एक महान कृति	-डॉ. नीलिमा वैद्य	28
9.	महेंद्र भटनागर : एक कालजयी कवि की सृजन...	-श्री गिरीश पंकज	31
10.	सूचना प्रौद्योगिकी : देवनागरी लिपि और हिंदी ..	-डॉ.बेबी कोलते	34
11.	शिक्षा क्षेत्र का एक्स-रे : 'और सिर्फ तितली'	-डॉ. एकनाथ पाटील	37
12.	हिंदी कहानी एवं उपन्यासों में राष्ट्रीय एकता....	-प्रा. महेश बनकर	44
13.	गद्य की सशक्त विधा : साक्षात्कार	-प्रा. एस. के. आतार	46

* * * *

ग्रामीण दलितकृषक समस्याएँ

(प्रभाकर माचवे के उपन्यासों के विशेष संदर्भ में)

डॉ. मंजूर सैय्यद

हिंदी विभाग प्रमुख, मराठा विद्या प्रसारक समाज संचालित कला, विज्ञान, वाणिज्य महाविद्यालय, ओझरमिग जि. नाशिक

महाराष्ट्र के सुपुत्र प्रभाकर माचवे जी हिंदीतर भाषी होते हुए गद्यकार एवं कवि के रूप में हिंदी साहित्य में नवीनता के पुजारी के रूप में ख्याति प्राप्त साहित्यकार हैं । उनकी औपन्यासिक कृतियों में अपने समय की ही नहीं बल्कि मानवी चेतना तथा संवेदनाओं का वह चित्र है, जो आधुनिक होते हुए भी कालबोध की अपार संभावनाओं से जुड़ा है । उनका सूक्ष्म चिंतन ग्राम दलितकृषक के जीवन की समस्याओं के वास्तव को उपन्यासों में उभारता है। डॉ. माचवे जी इस भूमि के साहित्यिक जागरूक प्रहरी हैं। वे देश के ऐसे लेखकों में से हैं, जो पचास वर्षों से सारस्वत कर्म से जुड़ रहे और जिनका सामाजिक लक्ष्य 'लोक कल्याण' में प्रतिष्ठित है । इस दृष्टि से उनके उपन्यास हैं –'परंतु', (1951) 'एक तारा' (1951) 'द्वाभा', (1952) 'साँचा', (1964) 'जो', (1962) 'किशोर', (1962) 'तीस चालिस-पचास', (1973) 'दर्द के पैबंद', (1974) 'किसलिए', (1975) 'दूयूत', (1976) 'लक्ष्मीबेन', (1976) 'कहा से कहाँ', (1978) 'दशभुजा', (1981) 'आँखें मेरी बाकी उनका', (1983) 'लापता', (1984) 'अनदेखी', (1988) 'कहाँ से कहाँ'

भारत का ग्रामीण दलितकृषक समाज :

भारत अधिकांश ग्रामों का देश है। भारत की आत्मा उसके ग्राम हैं, जिनमें दलितकृषकों की संख्या पंद्रह प्रतिशत है । ग्रामों में विशेषतः व्यवहारों के प्रति सामान्य सहमति और विश्वास के साथ सामूहिक जीवन के लिए अनेकानेक सेवाओं की आवश्यकता होती है । इसी परिप्रेक्ष्य में डॉ. प्रभाकर माचवे जी ने अपने उपन्यासों में ग्रामीण दलितकृषक समाज को स्थान दिया है । जिम्मेदार साहित्यकार समाज से संबंधित सूक्ष्म तत्वों का अनुभव करता है, तत्पश्चात चिंतन, मनन से साहित्य कृति में एकाधिक रूप में व्यक्त करता है । भारतीय ग्रामांचल से संलग्न दलितकृषक का वास्तव चित्रण करने वाले सारस्वत इसके साक्षी हैं । डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में 'ग्राम का दलितकृषक वह होता है लाखों और करोड़ों की तादाद में फैले हुए भुक्खडों, दाने-दाने को और चिथड़े-चिथड़े को मोहताज लोगों का समूह रहता है ।' [1]

स्पष्ट है, कि स्वाधीनता पश्चात के ग्रामीण दलित किसानों की सच्चाई का वर्णन समकालीन स्थितियों के विविध अंगों से किया है । इसी अनुभव की अभिव्यक्ति डॉ. माचवे जी ने 'दर्द के पैबंद' के 'आरंभ' पृष्ठ में दी है, कि इसमें "सेवा ग्राम (वर्धा) के पास के गाँव के महारों, शांति निकेतन के पास के संथालों या अरविंद आश्रम के औरोविल के पास के गरीब तमिल मजदूरों का जिक्र अवश्य है । (जिनकी गरीबी असलियत में बेहद अवर्णनीय है।)" [2] तो 'तीस-चालीस-पचास' की भूमिका में ग्राम चित्रण का उल्लेख करते हुए वे कहते हैं कि "समापन के लिए मैंने एक गाँव चुना है – सेवा पुरी" [3] अतः उपन्यासकार ग्राम जीवन के अनेकानेक पहलुओं के चित्रण से

अछूता नहीं है। प्रत्येक ग्राम, देहात, अंचल बस्ती की अपनी विशेषताएँ होती हैं जिनमें समस्याएँ भी परिस्थिति के अनुरूप निर्मित होती हैं, जिनसे ग्राम की चेतना प्रत्येक स्तर पर विद्रोहात्मक रूप में आ सकती है । अर्थात तत्कालीन साहित्य ग्रामीण जनसमाज का अंग है । डॉ. माचवे के उपन्यासों में चित्रित ग्रामों, कस्बो तथा मुहल्लों को महानगरीकरण एवं औद्योगीकरण ने व्यापक मात्रा में विभिन्न विशेषताओं में तबदील किया । ग्राम के परिवर्तन, परिवर्द्धन ने उपन्यासों में ग्रामीण दलित किसानों का विशिष्ट व्यक्तित्व एक समस्या के रूप में प्रस्तुत किया है । अतः उपर्युक्त पृष्ठभूमि के आधार पर डॉ. माचवे के उपन्यासों के विशेष संदर्भ में ग्रामीण दलितकृषक समस्याओं को अग्रलिखित रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है –

1.ग्रामीण दलितकृषक कारीगर की समस्याएँ :

महानगरों में विकास एवं यांत्रिकीकरण के कारण जीवन निर्वाह के एवं आवागमन के साधन ग्रामों तक पहुँचे । परिणामस्वरूप ग्रामों के परंपरागत स्वरूप को तथा जीवनशैली को ठेस पहुँची । महानगरीय सभ्यता एवं औद्योगीकरण से ग्राम समाज के अछूतों तथा परंपरागत निम्न जातियों के रोजी-रोटी के साधन नष्ट हुए यह वास्तविकता 'दूयूत' उपन्यास में अछूतों के कुनबे के माध्यम से व्यक्त हुई है । वहाँ मेहतर, धीवर, चमार, कसाई (खाटिक), बसोर आदि निम्न वर्ग के कारीगर रहते हैं । लेखक ने एक बूढ़े हरिजन के द्वारा अपना दुखड़ा रोया "अछूत तो हमें सब मानते ही हैं, पर अब दुःख की बात है कि पहले हमें घर से कुछ जूठा, फेंका हुआ अन्न, रोटी-सालन मिल जाता था अब वह भी बंद है । महँगाई बढ़ती जाती है। उस हिसाब में रोजगार नहीं मिलता ।" [4] ग्रामों की निम्न जातियों को भूखे पेट रखने के लिए नई शिक्षा व्यवस्था तथा यांत्रिकीकरण में वृद्धि तो हुई है । ग्राम महानगरों के करीब होने से शिक्षा सुधार के कार्य में वृद्धि तो हुई किंतु उससे भी ग्रामों के युवकों में छात्रों में कृषि क्षेत्र एवं निम्न स्तरीय कार्यों के प्रति दुर्भाग्यपूर्ण नैराश्य ही हाथ लगा । "वे अब घरेलू काम नहीं करते, झोपड़ियों का यह हाल है कि हर बारिश में छप्पर बनाना पड़ता है। मरे हुए जानवरों की खाल खींचने का काम कितना बड़ा और कठिन काम है ? नई पीढ़ी रबड की चप्पलें और जूते पहनने लगी है । हमारे लिए जूता गाँठने का काम भी नहीं रहेगा। नए ढंग की टटियाँ बन रही है । हमारे लिए मैला साफ करने का भी नहीं रहेगा । जंगल में जाकर शिकार करने सुअर पालने या बाँस की टोकरियाँ बुनने के काम में कितना तंत है। खेती में हमारी औरतें पहले थोडी-बहुत मजदूरी करती भी थीं। अब यह भी नहीं मिलतीं। बच्चे स्कूलों में पढ़ने जाकर फिरंट हो गए हैं। कहते हैं, ये गंदे और ओछे काम क्यों करेंगे ? हम किस तरह औरों से कम हैं ? .... हमारी जात बिरादरी में अब लड़कियाँ बड़ी होकर बिनब्याही रह जाती हैं । उनसे यह सब हलका काम नहीं होता । नई शिक्षा ने सबकी आँखें खोल दी हैं।"[5] निम्न स्तरीय अछूत जाति के समाज की झोपडियाँ या निवास गाँव से सटकर ही रहते हैं। गाँव दूर से गँधाते हैं । हरिजनों, मातंग-मांगों के झोपड़े बाहर थे । बाद में महारों की बस्ती होती है। फिर और आगे कुनबी लोग रहते हैं । .... अतः उपर्युक्त ग्रामीण दलितकृषक कारीगरों की समस्याओं के चित्रण के आधार पर कहा जाएगा कि ग्राम के दलितकृषक सदस्य कारीगर वर्ग भी बदलती हुई स्थितियों का शिकार हुआ है । आर्थिक पहलू उसके परिवार की दृष्टि से यहाँ भी महत्वपूर्ण है। परिणामतः उनके जीवन की अनेक समस्याएँ हैं

उनके समाधान हेतु वह प्रयत्नरत है।

2. गाँव के दलितकृषक की समस्याएँ :

भारत के ग्रामीण दलित किसान सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से पंगु हैं। स्वाधीनता पूर्व दलित किसानों के जो बद से बदतर हालात थे, स्वाधीनता के पश्चात भी पीढ़ी-दर-पीढ़ी बहुत परिवर्तन एवं सुधार दृष्टिगत नहीं है, उनके घर, कुनबे ग्राम के बाहर हैं, वे अल्प भूधारक हैं, उनकी खेती अब भी निसर्ग एवं परंपरागत स्वरूप तथा पद्धति-तंत्र पर ही अवलंबित है। अनेक पीढियों से स्वार्थी राजनीतिज्ञ एवं शासन की अर्थहिन स्वार्थी आर्थिक दृष्टि होने से आर्थिक दरिद्रता,गरीबी, लाचारी उनके माथे का कलंक बना हुआ है। अतः भारत के ग्रामों में दलितकृषकों के खेती विषयक प्रश्न अब भी वैसे ही है । जब देश में हम अंग्रजों के गुलाम थे । इनके लिए संविधान एवं शासन के प्रावधान में अनेकानेक योजनाएँ कभी-कभी केवल कागजी खानापूर्ति तक सीमित हैं या इन दलित किसानों तक आते-आते रह जाती हैं या तो करोड़पति किसानों के घरों में जाती हैं, घोर अज्ञान के कारण किसानों तक पहुँचाने में जानबुझकर विलंब होता है। इसी कारण दलित किसान खेती में नवीनतापूर्ण और संशोधित पद्धति, फसल, बीज तथा पशुओं के ब्रीड, वंश, जाति को स्वीकारने हेतु शायद ही कभी तैयार होते हैं । यह सच्चाई डॉ. माचवे जी उपन्यास में व्यक्त करते हैं, कि "कभी अच्छे बीज नहीं मिलते, तो कभी खाद नहीं थी । जानवरों की नस्ल सुधारने का कोई तरीका नहीं था । खेती के औजार बाबा आदम के जमाने के थे । कही सिंचाई की व्यवस्था नहीं थी तो कहां मवेशियों को चारा-दाने का प्रबंध नहीं था । इन किसानों के पास जमीन के अलावा जीवन-निर्वाह का और कोई साधन नहीं था, न कोई और पर्यायी व्यवसाय था, न हस्तद्योग या दस्तकारी"[6]

3. दलितकृषक और ग्राहक के बीच बिचौलिए एवं मझोलिए :

कृषि क्षेत्र में आधुनिक युग में बृहत मॉल से लेकर ग्राम की मंडी या बाजार तक मझोलियों की घुसपैठ ग्राहक और कृषक के मध्य कृषि से संलग्न अनेक क्षेत्रों में दलितकृषक अनुभव करते हैं। वे दलितों के श्रम व पसीने की कृषि-फसल का बहुतांश मुनाफा, हिस्सा बड़ी चालाकी से चतुरता से हड़पते हैं और न अज्ञानी दलितकृषक मजदूर का आर्थिक शोषण करने में अपनी बौद्धिकता के प्रदर्शन करते हैं । ग्राम शहरों के करीब होने से इन किसानों के लिए कृषि क्षेत्र की उपज, फसल शहरों की मंडियों में पहुँचाने में और वहाँ से जीवनावश्यक वस्तुएँ लाने में सुविधा होती थी । लेकिन अशिक्षा और दरिद्रता के कारण यहाँ व्यापक मात्रा में किसानों की लूट होती है। ऐसे शोषण युक्त व्यवस्था को एक दलित-किसान की बोली में हम 'द्यूत' उपन्यास में देख सकते हैं "सबसे बड़ी असुविधा तो खेती की उपज को बेचने की थी । वहाँ कई मझोलिए और बिचौलिए थे । समस्या अर्थतंत्र के चार खूँटों की थी - उत्पादन, वितरण, विनिमय, उपभोग । सब जगह दलाल थे और मेहनत का फल मेहनती को नहीं मिला था ।" [7] अतः स्पष्ट है कि दलित-किसानों की आर्थिक हानि होती है ।

4. दलित किसान : पुश्तैनी खेती का बँटवारा : ग्रामीण समाज में दलित किसान के कृषि क्षेत्र में परंपरागत खेती के माध्यम से पुरानी पीढ़ी की संपत्ति तथा खेती का बँटवारा पीढ़ी-दर-पीढ़ी होता रहा है। और अज्ञान के कारण दलित-किसानों के परिवार में सदस्यों की संख्या जितनी अधिक, उतने ही खेती के टुकड़े या विभाग होते हैं। दलितों की जमीन के

बँटवारे के समय आपसी खून के रिश्ते भी स्वार्थवश बेईमानी पर उतर आते हैं । साँचा उपन्यास का नायक केशो का परिवार इसी देहाती दलितों की दास्तान एवं रिश्ते का शिकार है । "बाप ने कुछ जमीन की काश्त बड़ी मेहनत से अपने पसीने की गाढ़ी कमाई से कर ली थी। पर वह बाद में भाई-बिरादरी, कोर्ट-कचहरी के चक्कर में उनके पास नहीं रह पाई थी । कैशो के छह भाई और चार बहनें थीं और जब यह सबसे छोटा लड़का केशो सयाना हुआ तो उसकी किस्मत में गाय भैंसें और रेवड चराना ही बाकी था ... घर की हालत बहुत खस्ता हो चुकी थी पुश्तैनी खेत बिके, बैल बिके, मकान के भी टुकड़े हो गए ।" [8] उस वक्त आर्थिक समस्या के कारण ही और भी अनेकानेक समस्याओं का निर्माण होता रहा है ।

5. दलित किसान परिवार : और स्त्री चेतना :

ग्राम में दलितकिसान परिवार में मुख्य समस्या आर्थिक है, जिसके प्रमुख कारणों में से एक उसका परंपरागत अज्ञान है, जिसके कारण उसे आर्थिक हानि सहकर दुःख झेलना पड़ता है । ग्राम संस्कृति में परंपरागत संयुक्त कुटुंब व्यवस्था है, जिससे इस परिवार का सब हिसाब, लेन-देन कार्य पुरुष करता है । इस व्यक्ति का शब्द सभी मामलों में अंतिम समझा जाता है। स्त्रियों को स्वातंत्र्य एवं अधिकार नहीं के बराबर है। ग्राम में यह स्थिति है। स्त्रियों का महत्व केवल वंशवृद्धि से लेकर चूल्हे चौके के चारदीवारी तक तथा उस खेत खलिहान में पसीने से लथ-पथ श्रम करने तक है । कृषि से संलग्न बहुतांश उत्पादन, वहन, वितरण इनके घर की बहू-बालाएँ , माताएँ ही करती हैं। यह कार्य परंपरा से हो रहा है "अब भी उसी तरह हाथों से ही खेती होती है । जैसे दो हजार बरस से होती आ रही है । स्त्रियाँ जादा काम करती है। मर्द काम करना बुरा समझते हैं" [9] आधुनिक युग की प्रतिष्ठित स्त्रीवादी अनामिका जी स्पष्ट मानती है "समाज की परंपरागत व्यवस्था ही पुरुषों के अंदर स्त्री के प्रति हीन भाव जगाती है ।"

6. दलितकृषक : आरोग्य के प्रति अज्ञान और अंधश्रद्धा :

शहर से दूर स्थित गाँवों की भी अपनी समस्याएँ हैं । जो ग्राम शहर से करीब हैं उनके स्वरूप में कुछ मात्रा में आधुनिकीकरण, नवीकरण की झलक, पानी की सुविधा तथा पक्के रास्तों के माध्यम से दिखाई देती है, जिसमें फंगा का एक बहुत छोटा-सा हिस्सा है । "गाँव की हालत तेजी से बदलती जा रही है ..... कितना कुछ बदल गया है । बिजली दूर-दूर तक पहुँच गई है । कच्ची सड़क पक्की बन गई है । अब जो पुराने राजा-जमींदार अत्याचार करते थे, नहीं रहे हैं ....."[10] ग्राम के अशिक्षित समाज को शहरी तड़क-भड़क का आकर्षण होता है । शहरी समाज शासन के सहयोग से अनेक योजनाओं प्रतियोगिताओं आदि के माध्यम से आरोग्य के विभिन्न उपक्रम कार्यान्वित करता रहता है। ग्रामों में ये योजनाएँ विलंब से कार्यान्वित होती हैं । लेकिन ग्राम का दलितकृषक समाज अज्ञानवश इन सरकारी योजनाओं के लाभों को आसानी से स्वीकारता भी नहीं, उल्टे वह उनका विरोध करता है। ग्रामीण जनता की इस मनोवृत्ति, प्रवृत्ति को माचवे जी ने 'दर्द के पैबंद' में इस तरह अभिव्यक्त किया है "पहले तो गाँव वाले समझे कि परिवार नियोजन वाले डाक्टर लोग आ गए । मारे डर के स्त्रियाँ भीतर आकर दुबक गईं । छोटे-छोटे बच्चे गंदे चिथड़े पहने चारों ओर इन नवांगतुक को घेरकर जमा हो गए । फिर एक अधेड़-सा पुरुष आया। हमें आपके पैसे भी नहीं चाहिए, न हमें कोई ऑपरेशन

कराना है ।"[11] ग्रामों में जनवृद्धि की रोकथाम करना वहाँ व्याप्त अज्ञान और परंपरागत अंधश्रद्धा के कारण असंभव है । फिर भी शासन अनेक योजनाओं द्वारा विभिन्न धरातल पर कोशिश करता रहता है। कुछ पहाड़ी प्रदेशों में आवागमन के साधनों की दुर्लभता भी इसके लिए जिम्मेदार है। इसके कारण आरोग्य के लिए आवश्यक दवाइयाँ व अन्य आवश्यक उपाय निम्न वर्गीय किसानों के कुटुंबों तक पहुँच नहीं पाते । "जसवंती गाँव में अलग दुखी थी । उसको बहुत दिनों से पेट का ऐसा विकार हो गया था जो अच्छा नहीं होता था, तिस पर भी घर का सारा कामकाज । उसकी सेहत गिरती जा रही थी । आखिरी दर्शन दे जाने की बात उसने पत्र में लिखी थी।" [12]

7. दलितकृषक : पिछड़ा कृषिक्षेत्र और बेरोजगारी :

भारत में सबसे अधिक लोग कृषि क्षेत्र से संबंधित हैं किंतु यह क्षेत्र सभी को रोजगार देने में असफल रहा है । अन्य देशों की तुलना में भारतीय खेती का तंत्र बहुत पिछड़ा हुआ तथा प्राचीन परंपरा पर आधारित है । बहुतांश खेती भी प्रकृति पर अवलंबित होने के कारण कभी-कभी बरसों फसल नहीं उपजती, जिससे वर्ष के तीन-तीन माह तक किसानों की खेती रिक्त रहती है । प्रकृति के प्रकोप से अकाल पड़ता है जिससे फसल पूर्णतः नष्ट हो जाती है । परिणामतः कृषिक्षेत्र से संलग्न लोग बेकार रहते हैं । 'दूयूत' उपन्यास में इस प्रकार की बेकारी का वर्णन है "पर असल में सामूहिक रूप से किसी के पास कोई काम नहीं था । सभी बेकार थे । लोग आसमान की तरफ ताकते थे कि कहीं फिर से कहर न बरपा हो जाए।"[13] "इस विषादपूर्ण अवस्था में सरकार से भी स्थायी रूप से कृषि क्षेत्र के लिए उपाय-योजना या आर्थिक सहायता नहीं मिलती । ऐसी स्थिति में किसान के सम्मुख व्यापक समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं । 'दर्द के पैबंद' में ऐसे हालात का वर्णन राज नामक पात्र के वक्तव्य द्वारा किया है कि "सरकार तो कुछ भी नहीं करती। महँगाई बढ़ती जाती है बाबूजी । नौजवान बेटा .... वह बेकार बैठा है । मैं अकेला मजदूरी करता हूँ । दूसरों की खेती पर सबका पेट कैसे भरने वाला है ? " [14]

भारतीय कृषि की स्थिति अधिक उपज करने की दृष्टि से विकसित नहीं है। अल्प भूधारक किसान भी परिस्थितिवश नए वैज्ञानिक औजार, नई नस्लों की फसल देने वाले बीज, कीटकनाशक दवाइयों का प्रयोग नहीं कर सकते । 'साँचा' का केशो ऐसा ही अल्प भूधारक किसान है , जिसकी खेती में सही ढंग से उपज नहीं होती । ऐसी अवस्था में उसे भूखा रहकर दिन गुजारने पड़ते हैं । "केशो ने ऐसे-ऐसे दिन बिताए हैं कि सूखे चने फाँककर ऊपर से बावड़ी का गडुआ भर ठंडा पानी पीकर रह गया है, जिसपर यह तंबाकू की कुटेव ।" [15] स्त्रियों को भी केवल खेती के मौसम के दिनों में ही काम होता है, अन्य दिनों में वे रिक्त हाथ या रोजगार बिना बैठकी रहती हैं । "दर्द के पैबंद' में किसान ने राज के साथ वार्तालाप में किसानों की स्त्रियों की ऐसी स्थिति स्पष्ट की है । "क्या आपके घर की स्त्रियाँ काम नहीं करती हैं ? पर और दिनों में खाली रहती हैं।" [16] डॉ. प्रभाकर माचवे जी के उपन्यासों के अल्प भूधारक किसानों की खेती के पिछड़ेपन एवं अनुपजाऊपन के संदर्भ में किसान निरंतर सोचा करते हैं । उसके लिए नए-नए औजारों एवं नई प्रविधि का प्रयोग करने की ललक उन किसानों में है। 'दूयूत' में इस प्रकार के संकेत मिलते हैं । द्रौपदी जिस गाँव में जाती है वहाँ का एक किसान जमीन की स्थिति से संबंधित इस प्रकार की चर्चा करता है कि "फिर सारी जमीन एक-सी नहीं । सब आदमियों की कार्य करने

की शक्ति और योग्यता एक-सी नहीं । हमें बिजली और मशीन, रासायनिक खाद और सुरक्षा के लिए शस्त्र आदि बनाने ही होंगे ।" [17]

8. दलितकिसान में एक दूसरे के प्रति त्याग भावना और पूंजिपतियों के प्रति सामूहिक चेतना :

खेती से संबंधित समस्याएँ दूर करने के लिए किसान कुछ मात्रा में जाग्रत हुआ है । उससे संलग्न कारीगर भी बेकार हैं । वे भी किसानों के साथ बेकारी के दुःख को सहते हैं । इस प्रकार की छुपी बेरोजगारी को दूर करने के लिए वे जीवनावश्यक वस्तुओं का निर्माण करते हुए एक-दूसरे की सहायता करना चाहते हैं। उपाय सोचकर ग्राम के कृषक समाज की बेकारी को दूर करने का विचार करना ही बेकारी की भयावहता का प्रकटीकरण है । बेकार अवस्था में खाली हाथ बैठा कारीगर द्रौपदी को इन समस्याओं का उपाय सूचित करते हुए कहता है कि 'हर आदमी गाँव में अपनी-अपनी कारीगरी या कौशल से धन, अन्न आदि वस्तुएँ पैदा कर और एक-दूसरे की आवश्यकता के अनुसार वह उत्पादन सब में बाँट दिया जाए । "[18] ग्रामों में कृषिक्षेत्र पर आधारित मजदूर तो हैं ही, किंतु वे भी हैं जिन्हें कुछ माह तक या अल्प समय तक ही रोजगार प्राप्त होता है, अर्थात उनकी रोजी-रोटी का साधन वही खेती है। ऐसी परिस्थिति में महानगर एवं औद्योगीकरण धीरे-धीरे ग्राम की ओर बढ़ रहा है तथा कारखानों का निर्माण हो रहा है जिसके लिए किसानों की जमीन ली जाती है। इसलिए द्यूत उपन्यास में कारखाने लगने से समाज की सभ्यता, संस्कृति कैसे बिगड़ेगी तथा रोजगार का साधन कैसे नष्ट होगा आदि की चर्चा किसान-धर्मराज से करता है, "गाँव वालों में जो कुछ बची-खुची त्याग की भावना है, एक दूसरे के लिए कुछ कर गुजरने की इच्छा है, जब यहाँ एक बड़ा देश[illegible] आएगा तब वह भी जाती रहेगा। तब कभी लोग अंधों की तरह एक दूसरे को मारेंगे, एक दूसरे का लहू पीएँगे और उसे सभ्यता कहा जाएगा। किसी को पता नहीं था कि भविष्य में क्या होने जा रहा है। कितना व्यापक नुकसान किसी वर्ग या संस्था का होगा, यह अनुमान भी किसी ने लगाया नहीं था । सब हवा में बातें कर रहे थे ।" [19] अतः स्पष्ट है कि रोजगार निर्मिति हेतु जहाँ कारखानों का निर्माण किया जा रहा है, वहाँ दूसरी ओर जमीन का उपयोग कारखानों के लिए किया जाएगा तो जमीन मालिक अशिक्षित किसानों के परिवार को नाना प्रकार के कष्टों को सहते देखेगा। यहाँ तक कि अपनी आँखों के सामने किसान परिवार के सदस्य को भूख से तड़पते हुए भी देखेगा।

डॉ. माचवे के उपन्यासों में दलितकृषक समाज की उपर्युक्त समस्याओं के आधार पर अग्रलिखित तथ्य उभरकर आते हैं।

निष्कर्ष :

1. भारत में ग्रामीण दलितकिसान कुछ मात्रा में प्रकृति पर अवलंबित हैं । परिणामतः जमीन से आय कम होने से गरीबी की हालत में जीवनयापन करना उनकी नियति बन गई है ।

2. भारत के ग्रामों में दलितकृषकों में सामाजिक शैक्षिक, आर्थिक सुधार बहुत अल्प मात्रा में हुआ है, परिणामतः सर्वत्र अंधश्रद्धा तथा अज्ञान व्याप्त है ।

3. ग्रामीण दलित किसान संस्कृति में स्त्रियों को पुरुष की तुलना में गौण स्थान है ; अतः परंपरागत चुल्हा-चौका करने में, बच्चों का पालन करने में ही उसका जीवन बीत रहा है ।

4. निम्न वर्ग के अधिकांश किसान कृषि कार्य के लिए उत्तम बीजों अथवा यंत्रपद्धति का प्रयोग

नहीं करते,परिणामतः उपज कम होने से किसान को आर्थिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है ।

5. ग्राम का दलितकिसान खेती के परंपरागत व्यवसायों को छोड़कर महानगर की तड़क-भड़क पूर्ण जीवनशैली की ओर आकर्षित हो रहा है ।

6. औद्योगीकरण में दलित किसानों की जमीन पूँजीपति वर्ग लालच दिखाकर खरीद रहे हैं, परिणामस्वरूप वह भूमिहीन है । गरीब रहा है ।

7. डॉ. माचवे के उपन्यासों में ग्राम के निम्नवर्गीय किसान की कृषिक्षेत्र से संलग्न बेकारी ने अन्यान्य समस्याओं, प्रश्नों का निर्माण किया है ।प्रमुखतः बेकारी से त्रस्त बेरोजगार युवा पीढ़ी ।

8. गाँव के अल्पभूधारक किसानों के युवा ही बेरोजगारी से असामाजिक कार्य करने में सबसे आगे हैं ।

9. प्रस्तुत उपन्यासों में चित्रित दलितकिसान की भूमिहीनता के कारण परिवारों का विघटन हुआ है, परिवार उजड़ गए हैं तथा बरबाद हुए हैं । यह सामाजिक भयावहता का संकेत है।

10.उपन्यासों में ग्राम समाज के दलितकिसानों के माध्यम से बेकारी का पहलू सामने आता है कि भारत का कृषि क्षेत्र अब भी बहुत पिछड़ा है। जमीन उपजाऊ नहीं है तथा उसे उपजाऊ बनाने के लिए अल्प भूधारक किसान का आर्थिक स्तर ऊँचा नहीं है ।

11. महानगर के आकर्षण से ग्राम का दलितकृषक समाज के युवक नगर, महानगर की ओर जा रहे हैं।

12. दलितकिसान के युवा चोरी करना, शराब पीने जैसी बुरी और असामाजिक आदतों के शिकार हैं ।

13. उपन्यासों में बेरोजगारी के कारण किसानों की स्त्रियाँ, मजदूरिनें भी घर के बाहर काम करती हैं, जिससे बालकों का लालन-पालन ठीक ढंग से नहीं होता ।

14. दलितकृषक समाज में रूढ़ि एवं परंपरागत मूल्यों के प्रति नकारात्मक विचार है । जागृति, विकास एवं चेतना का पोषक एवं संवर्धक आज का समाज रहा है।

संदर्भ सूची :

1. दूयूत - प्रभाकर माचवे पृ. 123
2. दर्द के पैबंद - प्रभाकर माचवे पृ. 14
3. तीस-चालीस-पचास डॉ. प्रभाकर माचवे पृ. - भूमिका से
4. दूयूत - प्रभाकर माचवे, पृ. 76
5. वही, पृ. 78
6. वही, पृ. 78
7. वही, पृ. 70
8. साँचा - प्रभाकर माचवे , पृ. 23
9. दर्द के पैबंद - प्रभाकर माचवे पृ. 23
10. वही, पृ. 20
11. वही, पृ. 20
12. साँचा - प्रभाकर माचवे पृ. 81
13. दर्द के पैबंद - प्रभाकर माचवे पृ. 126
14. साँचा - प्रभाकर माचवे पृ. 127
15. दूयूत - प्रभाकर माचवे पृ. 17
16. वही, पृ. 101
17. वही, पृ. 117
18. वही, पृ. 9
19. वही, पृ. 184

* * * *